रूसी कहानी

इवान बूनिन

परायों के बीच

परायों के बीच (रूसी कहानी) : इवान बूनिन

परायों के बीच (रूसी कहानी) : इवान बूनिन

Parayon Ke Beech (Russian Story) : Ivan Bunin

रेलवे स्टेशन पर हमेशा की तरह हलचल नहीं थी। पावस रात्रि का आगमन होने को था। जब नौ बजे वाली डाक रेलगाड़ी निकल गयी तो सब जल्दी-जल्दी सबसे ज़रूरी काम निपटाने में लग गये, जिससे शीघ्र ही अपने-अपने घर पहुँचकर, नहा-धोकर, साफ-सुथरे कपड़े पहनकर हल्के मन से, अपने परिवार के साथ उत्सव की प्रतीक्षा की जाय, ताकि कम से कम थोड़े समय के लिए ही सही, निपट बेढंगी जीवनचर्या से आराम मिल सके।

सदैव लोगों, भिनभिनाती आवाज़ों और बोझिल गर्म हवा से ठसकर भरा रहने वाला, मद्धिम रोशनी से युक्त तृतीय श्रेणी का अहाता, अब ख़ाली और साफ-सुथरा था। खुले हुए खिड़कियों और दरवाज़ों से रात दक्षिण की ताज़गी बहा रही थी। कोने में

उत्कीर्ण स्वर्णिम प्रतिमाओं को मोमबत्तियाँ हल्का प्रदीप्त कर रही थीं। जिनके बीच से यीशू का साँवला मलिन चेहरा झाँक रहा था। लाल काँच की प्रतिमा ज्योति उसके सामने शान्ति से टिमटिमा रही थी, सुनहरी किनारियों पर चमकती रोशनी और प्रकाश की रेखाएँ झिलमिला रही थीं।

सूखाग्रस्त जिलों से आये हुए पथिकों के लिए उत्सव की तैयारियों हेतु जाने के लिए कोई जगह न थी। वे लम्बे प्लेटफार्म के अन्त में अँधेरे में बैठे थे।

वे स्वयं को मातृभूमि से कहीं बहुत दूर, पराये लोगों के बीच, पराये आसमान के नीचे महसूस कर रहे थे। उन्हें जीवन में पहली बार 'निम्नता' पर, दूर देश में रोज़गार के लिए उतरना पड़ा था। वह हर चीज़ से डर रहे थे, यहाँ तक कि हम्मालों के सामने बेचैनी और उतावलेपन से अपनी फटी-चिथड़ी टोपियाँ हिला-डुला रहे थे। दूसरे दिन से वे ऊबने के कारण खिन्न थे, इस इन्तज़ार में कि कब स्टेशन मास्टर के सहायक का कमज़ोर और घमण्डी व्यक्तित्व (वे पहले ही उसका नाम 'यायावर' धर चुके थे।) उनकी ओर आये और कड़ककर ऐलान करे कि कब और कौन-सी मालगाड़ी उन्हें ख़ारत्सिक तक ले जाएगी। इसी ऊब में वे सारा दिन सोते रहे।

बादल घिर आये। कभी-कभी पॉपलर की सुगन्ध से युक्त त्रिवित बयार के गर्म झोंके आ जाते थे। पास ही के किसी पोखर से निर्विघ्न आ रहा मेंढकों का व्यंग्यात्मक अट्टहास और

हर तरह की अविरल ध्वनियाँ भी मौन को नहीं बेध पा रही थीं। दायीं ओर धीरे-धीरे सूर्यास्त हो रहा था, जिसकी ओर रेल पटरियाँ मन्द चमक के साथ भागी जा रही थीं, बायीं ओर पहले ही घना अँधियारा छाया हुआ था। सिग्नल की बत्ती हवा में नितान्त अकेले मुरझाये हरे तारे की तरह लटकी हुई थी। वहीं कहीं के अनजाने, मैदानी इलाकों से रात्रि का आगमन हो रहा था।

ओह, अभी जल्दी तो नहीं होगा। फुसफुसाकर एक ने कहा, जो स्टेशन की कचरापेटी के पास अधलेटा, भुनभुनाता हुआ ऊँघ रहा था।

काम ही ऐसा है क्या? दूसरे ने प्रत्युत्तर में कहा-जल्दी तो नहीं होगा, अब तो सात से ज्यादा नहीं होगा।

और नहीं तो आठों को भर लेगा, तीसरे ने जोड़ा।

सभी को बुरा लग रहा था। सिर्फ एक यह मानने को तैयार नहीं था।

अरे बोर हो गया? “आ-आ-आ” उसने पहले बोलने वाले की नकल करते हुए जम्हाई ली। देखना दोस्तों, अभी तो गरजना भी शुरू करेगा।

जागो, कि!ख, तूफ़ान भी आ सकता है। पहले ने गम्भीरता से जवाब दिया और बड़े व्यस्त लहजे में अगले की ओर मुखाबित हुआ :

परमेनिच, ज़रा देखो तो अपनी घड़ी, तुम पढ़े-लिखे हो।

परमेनिच ने बड़ी दबी हुई सौम्य आवाज़ में उत्तर दिया।

मुझे समझ नहीं, छोटू, पढ़ा-लिखा सब बराबर हो गया है। तीन काँटे ही तो हैं।

अरे हाँ सब बराबर नहीं है क्या? किरील ने फिर व्यंग्य से जोड़ा, चाहे देखो, चाहे न देखो, सब एक ही बात है...

बड़ी देर तक मौन रहे। बादल ऊपर तक छा गये, गर्म रात का घना अँधेरा हल्के से सबका आलिंगन कर रहा था। बूढ़े ने चिलम खोली, उँगली से उसके अन्दर पड़े लाल अंगार को दबाया, और कुछ इस तरह गर्म कश खींचा, जिससे अपनी सैनिकों-सी मूंछों और फर के ओवरकोट के गरेबान को हल्का रोशन कर दिया। किरील के उदर पर पड़ी हुई सफ़ेद कमीज़ और दो अन्य अधेड़ों के खुरदुरे, फटे हुए गर्म कोट एक क्षण के लिए धुंधलके से झलक उठे। फिर उसने चिलम को बन्द किया, धुआँ छोड़ा और बायीं ओर, अपने भतीजे के ऊपर लुढ़क गया। वह ऊँघ रहा था। उसकी लम्बी पतली, सफेद रंग के बनात में लिपटी हुई टाँगें बिना हरकत पड़ी हुई थीं, दुबले-पतले शरीर की रूपरेखा से अनुमान हो रहा था कि यह अभी बिल्कुल बच्चा-सा है, थका-हारा और समय से पूर्व ही काम में खींच लिया गया है।

फ्योदर, सो रहे हो? हौले से बूढ़े ने उसे हिलाया।

न-नहीं, उसने फुसफुसाती आवाज़ में उत्तर दिया।

ऐं, ऊब गया क्या?

प्रत्युत्तर तुरन्त नहीं आया;

मैं क्यूँ ऊबने लगा भला?

अरे हाँ रे। तू बता दे, डर मत।

मैं वैसे भी नहीं डरता।

बोल भी अब, छुपा मत।

फेद्का चुप रहा, बूढ़े ने उसके दुबले कन्धों को देखा...फिर धीरे से करवट ले ली।

अब तो सूर्यास्त भी अन्धकारमय हो चला था। स्टेशन के छत की संरचना रात्रिकालीन आकाश की पार्श्वता में बमुश्किल चित्रित हो रही थी। वहाँ जहाँ ये मंज़र धरती के अन्धकार में समाहित हो रहा था, वहीं हरी, नीली व लाल रोशनियाँ अठखेलियाँ करती हुई झिलमिला रही थीं, पहियों पर सावधानीपूर्वक बल खाता हुआ इंजन प्लेटफार्म के पास से लुढ़कता चला गया और उसे अपनी जलती अँगीठी की अरुणाई से चमका गया, उसके पास ही, नरक के ठुसे कोने की तरह, कुछ काले लोग रेंग रहे थे, और फिर सब अँधेरे में डूब गया। वे लोग बड़ी देर तक सुनने की कोशिश करते रहे कि वो किस तरह कहीं किनारे गर्म भाप से फुँफकारता रहा।

फिर दूर से ही कोई भोंपू मिमिया उठा। अन्धकार और रंगबिरंगी रोशनी के बीच से प्रकट हुई त्रिभुजीय सुर्ख आँखें अलग से

दिखायी पड़ने लगीं। वह ज्वलित था और धीरे-धीरे पास आता जा रहा था, और उसके पीछे खिंची आ रही थी लम्बी, अन्तहीन मालगाड़ी, और भी मन्द गति से खिसकती हुई, वह रुका और खामोश हो गया। मिनट भर के भीतर कुछ चीखा, चिल्लाया, डिब्बे हिले, कुछ पीछे सरके और मृतप्राय हो गये। किसी की तेज़ आवाजें आयीं और वो भी चुप हो गयीं। कोई अप्रत्यक्ष व्यक्ति टॉर्च लिये आ रहा था, और टॉर्च का चमकता गोल बिम्ब, झुलसा-सा, डिब्बों की दीवारों के नीचे हिल रहा था।

चौंतीस, आदमियों में से एक बोला,

क्या? डिब्बे? ज़्यादा होंगे।

हाँ हो सकता है, ज़्यादा हों...

फेद्का हाथ पर बल देकर घूमा और देर तक इंजन के काले ढेर को जिसके बीचोंबीच धुंधली चमक थी, देखता रहा, सुनता रहा कैसे उसके अन्दर कुछ उबलता और जमता-सा है, कैसे वह बाद में इंजन से अलग हुआ, बोझ हटने के हल्केपन से भारी उसाँस लेकर अँधेरे में चला गया, बारम्बार सीटी बजाकर मार्ग में माँग करता हुआ...

कुछ भी, कुछ भी यहाँ उत्सव की याद नहीं दिला रहा था।

मैं सोच रहा था, कम से कम उत्सव में तो गाड़ियाँ नहीं चलती होंगी। फेदका ने कहा।

नहीं चलती होंगी। उन्हें नहीं चलने की अनुमति नहीं...

और फिर शुरु हुआ भिन्न-भिन्न अनुमानों का दौर कि हो सकता है, इसी रेलगाड़ी से उन्हें भेज दिया जाय। ऐसी रात में मालगाड़ी के डिब्बों के अँधेरों में बैठना कठिन होता है, हाँ लेकिन सब अच्छा हो, अगर अन्ततः भेज ही दिया जाय।

बूढ़े ने ख़ारात्सिक की बात उठायी, परन्तु आगे पूर्ण अज्ञान था, जैसे-ये खारात्सिज़्क है कहाँ जैसे-कब ये वहाँ पहुँचेंगे, जैसे-रोज़गार कैसा होगा, और हाँ, होगा भी अब या नहीं? अब, काश अपने स्थानीय परिचितों से मुलाकात हो जाय, जो अच्छी जगहों पर जाने का मार्गदर्शन दे सकें। वरना ऐसा न हो कि फिर कहीं किसी थकावटी प्रतीक्षा में बैठना पड़ जाय, सूखी डबलरोटी को स्टेशन की टंकी के गर्म पानी के साथ पीना पड़ जाय। और फिर सब पर परेशानी, बेचैनी छा गयी। बल्कि अब तो किरील भी करवटें लेने लगा, बेचैनी से खुजलाने लगा, उठ बैठा और सर झुका लिया...

हम यहाँ ठहरे ही क्यों? एक सन्देही आवाज़ सुनायी पड़ी।

कम से कम शहर ही चले जाते। लगभग चार मील ही तो...

और अभी नहीं बैठे तो? किरील ने उदास स्वर में उत्तर दिया-इसे छोड़ दिया, तो बैठे रहना और दस दिन।

जाकर पूछना चाहिए।

पूछे किससे?

हाँ स्टेशन मास्टर से...

ठीक ही तो है...

हाँ उससे अब, शायद, अरे नहीं...

अरे, किसी से भी उसकी जगह...

काम ही तो है, यहाँ भी वैसा ही होगा-किरील पहले की तरह बुदबुदाता-सा बोलता गया।

वैसा नहीं होगा, कहते हैं कम होगा-वैसे भी हमारे पास कोई और चारा नहीं...

तो फिर क्या भगवान के लिए चले जायें?

और सभी बेचैनी से स्टेशन की इमारत देखने लगे, जहाँ खिड़कियों की झलक दिख रही थी, जिनमें हर परिवार में उत्सव की तैयारियाँ चल रही थीं।

दिन, ये दिन ही ऐसे हैं। बूढ़े ने ठण्डी साँस के साथ, मंद घुटी आवाज में कहा-और हम किन्हीं ततारों की तरह, चर्च तक में नहीं गये एक भी बार।

दद्दा, तुम्हें तो इस वक्त चर्च के समूह गान में होना चाहिए, परन्तु बूढ़ा धीरे से कहे गये ये उदास शब्द नहीं सुन पाया, वह बैठा रहा और अपनी सोच में बड़बड़ाता रहा।

“सभी आदि शक्तियों व अधिकारों के साथ देवदूतों के चेहरे सबको मात कर रहे हैं, चेहरे, जो आ ले लूया गाना भी गाते हैं...” और कुछ पल चुप रहकर, अपने सामने शून्य को निहारते हुए, विश्वासपूर्वक जोड़ा।

“अवतरित हो, भगवन, धरती को न्याय दो, तुम ही तो हमेशा पुनर्जन्म लेते हो..."

सभी दृढ़तापूर्वक मौन थे।

सब एक ही बात सोच रहे थे, सबको उदासी और यादों के बन्धन ने बाँध रखा था। लो आ ही गयी संध्या, चर्च की अन्तिम तैयारियों के लिए रुकी हुई हलचल प्रारम्भ हो ही गयी। मोहल्लों में बहुत चहल-पहल थी, पुरुष, बड़े-बूढ़ों और धवल कमीज़े पहने, करीने से बाल सँवारे तैयार, और अर्द्धअलंकृत युवतियाँ व अधेड़ महिलाएँ सिर से पैर तक काम में डूबी हुईं, ईस्टर केक और बिस्किटों को पैकटों में बाँध रही हैं...अब गाँव ख़ाली और ख़ामोश रह जाता है...

क्षितिज की सघन रुपरेखा के ऊपर सूर्यास्त की पार्श्वता में, गाँव आने-जाने वालों की परछाइयाँ नज़र आती हैं, गाँव में, चर्च के बाजू से गुज़रने वाली ठेलागाड़ियाँ चरमरा रही हैं, चर्च प्रकाशमय हो उठता है...चर्च में पहले से पाठ चल रहे हैं, पहले ही भीड़ और ठेलठाल है, मोमबत्ती, नये-नये रोयेंदार कोटों और ताजे रंगे कपास के बने वस्त्रों की गंध है...और चर्च के दूसरी तरफ़ निकास मार्ग और कब्रों के पास लोगों के झुण्ड धुंधला रहे हैं, आवाजें आ रही हैं...

अकस्मात् दूर कहीं घण्टियाँ बजायी गयीं। आदमियों में हलचल हुई, सभी एक बार में उठ खड़े हुए और हाथों से कन्धे, माथा और सीना छूते हुए, नंगे सिरों से पश्चिम की ओर ज़मीन तक

झुक गये सजदे में।

फ्योदर! उठो! बूढ़ा घबराया-सा बड़बड़ाया।

लड़का कूद कर उठा और हड़बड़ी में जल्दी से सजदे की रस्म अदा की।

बाकियों ने भी ऐसा ही किया। जल्दबाजी में बाजुओं को कन्धों पर फेंकते हुए।

अब स्टेशन की खिड़कियों में मोमबत्तियों की रोशनी जगमगा उठी। स्वर्णिम मूर्तियाँ स्वयं की सुनहरी आभा में समाहित होने लगीं। तृतीय श्रेणी का अहाता कार्यकर्ताओं, सेवकों से भरने लगा। पुरुष प्लेटफ़ार्म में, दरवाजों के पास खड़े हो गये। उसके अन्दर जाने का साहस न करते हुए।

युवा पादरी पूजन सामग्री लेकर जल्दी-जल्दी आया, और चमकीली किनारियों से लगाकर चढ़ावा चढ़ाया, वह कुछ बोल भी रहा था और लोगों से भरे अहाते के म्लान धुंधलके को देखता जा रहा था। बुझती हुई चौकस मोमबत्तियाँ झिलमिला रही थीं, हवा के झोंके उनकी लौ को हिला जाते थे। फिर कहीं दूर से, काली रात्रि के आकाश के नीचे घनगुंजन व्याप्त हो गया।

“अवतार तुम्हारा, यीशू हमारी रक्षा करे, देवदूत स्वर्ग में गाते हैं...” उतावलेपन से पादरी ने खनखनाती आवाज़ में शुरू किया।

और जैसे ही उसने यह कहा, सबमें उत्तेजना फैल गयी, झुकते, प्रणाम करते लोग लहराने लगे, अहाते में प्रकाश बढ़-सा गया, हाथों में पकड़ी मोमबत्तियों की गुनगुनी झिलमिल सभी के चेहरों पर दमक उठी।

सिर्फ पुरुष अँधेरे में खड़े थे। वे कभी घुटनों पर झुक रहे थे और जल्दी-जल्दी सजदा कर रहे थे, तो कभी देर तक माथा टेक रहे थे, कभी लालची और याचक निगाहों से प्रकाशमय अहाते के भीतर बत्तियों और मूर्तियों को निहारते हुए, अपने पपड़ाये होंठों वाले पिचके हुए चेहरों को उठाकर, अपनी भूखी आँखें...

अवतरो, प्रभु, धरा को न्याय दो।

अनुवाद : प्रतिभा शुक्ला